ISSN No-2031-5063 Vol.1,Issue.VI/Dec 2011pp.1-4

Research Paper

समालोचक आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की आलोचना दृष्टि

डॉ. परितोष बैलगो,
पौत्र श्री पी.एन.शर्मा, पत्रकार विहार,
ब्लाक न. I, सेट न. 2, संकटमोचन,
शिमला–171010

प्रस्तावना

साहित्यक क्षेत्र में ग्रन्थों को पढ़कर उसके गुणों एवं दोषों का विवेचन करना और उसके सम्बंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा। इस परिनिष्ठत परिभाषा को हिन्दी के प्रायः सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं।1

समालोचना मुख्य रूप से न्याय का विषय है। इसमें तर्क की प्रधानता होती है, कल्पना और भाव गौण रूप से आते हैं। तर्क, सत्य एवं विश्लेषण के तत्वों के बाहुल्य के कारण इसका विशेष आकर्षण विज्ञान की ओर प्रतीत होता है। कवि की वृति में समाज की आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। समालोचक समाज के प्रतिनिधि के रूप में उसकी समीक्षा करता है, समाज को उसके गुण–दोषों से परिचित कराता है और सहानुभूति के साथ कलाकार के श्रम, उद्देश्य तथा तात्पर्य को स्पष्ट करता है। समालोचक की ही प्रतिभा से कलाकार का व्यापार–वृक्ष फलयुक्त होता है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का व्यक्तित्व संवेदनशील है, जिसका प्रभाव उनकी आलोचना पद्धति में अनिवार्य रूप से परिलक्षित होता है। उनकी आलोचना–पद्धति उनके व्यक्तित्व के गुणों की देन है। विष्णुकांत जहां शास्त्र निष्णात आचार्य हैं, वहां आद्रचेता रसिक भी हैं। प्रारम्भिक जीवन की कवि–सुलभ रसिकता और सृजन संवेदना के कारण आलोचना के दोनों धरातल सैद्धांतिक और व्यावहारिक मर्मस्पर्शी एवं रसोसिक्त हो गए हैं। शास्त्रज्ञ, आचार्यत्व एवं कवित्व की सहस्थिति से आपूरित व्यक्तित्व के कारण उनकी आलोचनाओं में सर्वत्र, राग प्रियता का अविच्छिन्न प्रवाह मिलता है।

हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य समीक्षकों में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। विषय का तलस्पर्शी अध्ययन, शोधपरक दृष्टि एवं गहन अध्यवसाय ही वह पृष्ठभूमि है जिसने तेजस्वी समीक्षक के रूप में शास्त्री जी को प्रतिष्ठा प्रदान की है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के समीक्षा–सिद्धान्तों के मूल–स्रोत उनके व्यक्तित्व के प्रमुख तत्त्वों–प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास में निहित है। उनकी प्रतिभा के गुण गम्भीरता, विचारशीलता, सहृदयता, तार्किकता आदि उनकी समीक्षा के मूलाधार है। उनके व्यक्तित्व की जिज्ञासावृत्ति, तथ्यातथ्य निरूपण वृत्ति विवेकी वृत्ति एवं आत्मवैशिष्ट्य की प्रवृत्ति आदि कतिपय सह प्रवृत्तियां हैं, जिनके द्वारा उनकी समीक्षा को सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ है। उनकी कारयित्री और भावायित्री प्रतिभा की अधिकता होते हुए भी, भावयित्री प्रतिभा के बल पर आलोचना लिखने में अधिक समर्थ हुए हैं। उन्होंने अपने समीक्षा–सिद्धांतों के निर्माण में वेद, उपनिषद पुराणों से क्रमशः जीवनोत्साह, तत्त्वचिंतन एवं सगुणभक्ति, तुलसी, कबीर आदि से राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आदर्श के साथ–साथ सौंदर्य–दृष्टि, कला निष्ठा व प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की भावना ग्रहण की। तुलसी की रामचरित मानस व विनय पत्रिका का आदर्श ग्रहण किया। भरत, मम्मट, विश्वनाथ आदि से साहित्यिक रस दृष्टि और पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्याचार्यों से साहित्यिक व्याख्यान–क्षमता एवं रामचन्द्र शुक्ल, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि विद्वानों की रचनाओं से सैद्धांतिक समीक्षा तत्त्वों को ग्रहण करके अपनी चिन्तन प्रणाली में यथावश्यक समावेश करते हुए अपने सशक्त, मौलिक और साहित्यिक व्यक्तिव का निर्माण किया है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने अपने जीवन के मूल संस्कारों और शास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन के द्वारा हिन्दी समीक्षा को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। उनकी समीक्षा सिद्धान्तों के प्रेरणा स्रोत भारतीय संस्कृत साहित्य शास्त्र से गृहीत हैं। वे समीक्षा के सभी अंगों का समान रूप से विन्यास करते हुए चले हैं। उनकी इस विचारधारा के मूल में, उदात्तता, मर्यादा, गम्भीरता एवं आदर्शवादिता से समन्वित संस्कारों का बल निहित है। भारतीय संस्कृति के प्रति मोह ने उनकी विचारधारा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री मर्मज्ञ आलोचक और कुशल निबंधकार हैं। उनका कृतित्व गुण और गरिमा से युक्त है। आलोचनात्मक निबंध लिखने के लिये कैसे प्रेरित हुए इस पर कहते हैं–आलोचनात्मक निबंध लेखन मेरे अध्यापक धर्म का ही अंश है। विश्वविद्यालय में विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय कई पूर्व स्थापित मान्यताओं से मैं असहमत होता रहा। समसामयिक साहित्य के सम्बंध में भी कभी–कभी मेरी प्रतिक्रिया विभिन्न विचारकों की प्रतिक्रियाओं से भिन्न होती रही है। ऐसी परिस्थिति में मैं अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिये युक्तियुक्त आधार तलाशता रहा हूं और अपनी मान्यताओं को व्याख्यानों के माध्यम से प्रकट भी करता रहा हूं। मेरे गुरुजनों और मित्रों को लगता रहा कि मुझे अपनी बात लेखों के रूप में भी प्रस्तुत करनी चाहिये। व्याख्यान में कही हुई बात तो हवा के साथ उड़ जाती है, उसका प्रभाव भी श्रोताओं तक ही सीमित रहता है। कई बार व्याख्यानों में बात की युक्तियुक्तता पर कम और कहने की शैली पर अधिक बल रहता है और उससे भी व्याख्यान सफल हो जाते हैं। अतः मुझे लगा कि केवल व्याख्यानों तक ही सीमित रहना उचित नहीं है। मुझे लगा कि अगर अपनी बातों को स्थायित्व देना है, व्यापक पाठकवर्ग तक पहुंचना है और उन्हें युक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना है तो लेखन का माध्यम ही स्वीकार करना चाहिये। अतः मैंने आलोचनात्मक लेख लिखने शुरू किये। मैं इसे भगवान की कृपा ही मानता हूं कि मेरे लेख प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे और पर्याप्त सम्मान प्राप्त करते रहे।2

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की 1963 में प्रकाशित पहली कृति 'कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध' है। 1953 से 1963 के बीच लिखे गए ग्रंथ के आरम्भ में 'आभारी हूं' शीर्षक के अन्तर्गत इस बात को शास्त्री जी ने स्पष्ट किया है– 'प्रस्तुत निबंध संग्रह में भिन्न–भिन्न

अवसरों पर लिखित मेरे कुछ निबंध संगृहीत हैं। इनके लेखन का श्रेय मेरे उन कृपालु गुरुजनों एवं स्नेही सुहदों को प्राप्त होना चाहिये जिनके आदेशों एवं अनुरोधों ने मुझ जैसे लेखनीभीरू व्यक्ति को भी लिखने के लिये विवश कर दिया।' लेखक ने यह भी स्वीकार किया है कि आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल के 'अनुल्लंघनीय आदेश' ने तथा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री कल्याणमल लोढ़ा, पं. परमानन्द शर्मा, रामविलास शर्मा एवं नामवर सिंह की प्रेरणा ने लिखने के लिये उसे विवश किया।3 मोहन राकेश की कृति 'आषाढ़ का एक दिन' पर समीक्षापरक टिप्पणी वाला आलोचनात्मक निबंध है 'आषाढ़ का एक दिन कुछ विचार'। 'अनामिका' नाट्य संस्था की विचार गोष्ठी के लिये लिखित इस आलेख में लेखक ने मोहनराकेश के शिल्प की प्रशंसा करते हुए कुछ असहमति के बिन्दु भी उभारे हैं। 'रीतिकालीन हिन्दी कविता पर एक दृष्टि' तथा 'असमिया में राम साहित्य' निबंध भी पठनीय है। इस ग्रंथ में कुल 17 आलोचनात्मक निबंध हैं जो मूलतः साहित्य से सम्बद्ध विषयों पर केन्द्रित हैं। साहित्येत्तर निबंध केवल एक ही माना जा सकता है– डा. मुखर्जी की शिक्षा नीति। श्यामा प्रसाद मुखर्जी के शिक्षा सम्बंधी विचारों एवं युगान्तरकारी शिक्षा–नीति का विश्लेषण करने वाला यह निबंध कृति का अंतिम किन्तु महत्त्वपूर्ण आलेख है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने शीर्षस्थ आलोचकों की पंक्ति में जो विशिष्ट स्थान बनाया है उसका प्रस्थान बिन्दु है यह कृति। इस दृष्टि से 'क्या शुक्लजी वस्तुवादी थे?' 'लक्ष्मीनारायण मिश्र की प्रसाद सम्बंधी मान्यताओं पर विचार' तथा 'आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल और रस सिद्धांत' शीर्षक आलेख समालोचक की तलस्पर्शिता का अहसास कराते हैं। संग्रह के आलेखों की समृद्ध भाषा और प्रभावी शैली आलोचकीय विवेक से युक्त होकर अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है। यही प्रभविष्णुता परवर्ती आलोचना केन्द्रित ग्रंथों में क्रमशः वर्द्धित होती गई है।

यश मालवीय का कथन है– वह दक्षिण की राजनीति से जुड़ते हैं, पर बाएं हाथ चलने वाले कामरेडों का भी भरपूर सम्मान करते हैं, शायद इसीलिये वामपंथ के गढ़ बंगाल में भी निरंतर समादृत होते हैं। वह अजातशत्रु होने की अवधारणा को लगातार निगाह में रखते हैं। अपने राजनीतिज्ञ को अपने साहित्यकार अथवा अध्येता पर हावी नहीं होने देते। उनका चिंतनशील मन सतत सक्रिय एवं क्रियाशील रहता है। पुस्तक के शीर्षक निबंध 'कवि निराला की वेदना' में वह महाप्राण निराला की मनोभूमि से जैसे तदाकार हो उठते हैं। एक तादात्म्य का तंतु प्रतिपल अन्वेषित करते हुए अपनी स्थापना में वह रचना का सत्य निर्धारित करने में पूरी तरह से सफल होते हैं। कृतज्ञता से बड़ी कोई पूजा–प्रार्थना नहीं होती। शास्त्री जी का रचना संसार एक कृतज्ञ मन के आलोक से भींगा हुआ है। समय और व्यक्ति दोनों से उनके गहरे सरोकार रहे हैं, दोनों से उन्हें बहुत मिला है। दोनों को उन्होंने बहुत कुछ दिया है, शायद इसी कारण उनकी रचना और परिवेश विश्वसनीय हैं।4

1973 में प्रकाशित कुछ चंदन की कुछ कपूर उनकी यह कृति अक्तूबर 1963 से जुलाई 1969 के मध्य लिखित निबंधों का संकलन है। कुल 23 निबंधों वाले इस संग्रह में 'कुछ चंदन की' शीर्षक प्रथम खण्ड में चार निबंध समाहित हैं एवं 'कुछ कपूर की' शीर्षक द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत 19 निबंध हैं। आरम्भिक खण्ड के चार निबंधों में प्रथम निबंध 'भारतीय संस्कृति में कबीर का योगदान' में तत्कालीन परिस्थितियों का विवेचन करते हुए लेखक ने उन इतिहासकारों से अपनी असहमति जताई है जो मध्यकालीन भक्ति साधना और साहित्य को इस्लामी आक्रमण की प्रतिक्रिया मानते हैं। लेखक ने कबीर को 'भक्ति गंगा को उत्तर भारत के जनमानस में प्रवाहित करने वाले हरिद्वार' मानते हुए 'स्वानुभूति' को ही उनके साहित्य की कसौटी स्वीकार किया है। शास्त्री जी की स्थापना है कि कबीर की प्रतिभा सृजनमूलक थी, अनुकरणमूलक नहीं। लेखक का स्पष्ट मत है कि 'कबीर की भूमिका ऋषि की है जो प्रयोजन पड़ने पर प्राचीन को अस्वीकार कर नवीन विधान देने की क्षमता रखता है, पुरोहित की नहीं, जो प्रायः अपरिवर्तनवादी एवं प्राचीन विधानों का अन्धानुगामी होता है।

भक्ति साहित्य विशेषतः तुलसी साहित्य के अधिकारी विद्वानों के रूप में देश में कीर्ति अर्जित करने वाले आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के 'विनयपत्रिका में मनोविजय की साधना' एवं 'विनयपत्रिका में क्रिया और कृपा' शीर्षक निबंधों में भक्त मन की भावुकता, दृढ़ता एवं तल्लीनता के दर्शन किये जा सकते हैं। 'विनयपत्रिका में मनोविजय की साधना' शीर्षक निबंध में मन की तमाम दुर्बलताओं, उसके समस्त विकारों एवं विषयशक्ति का विस्तृत वर्णन करते हुए लेखक ने तुलसी साहित्य के विविध उद्धरणों के माध्यम से सतत् साधना एंव इंद्रिय निग्रह को मन को विजित करने वाले साधन के रूप में स्वीकार किया है।

प्रथम खण्ड के चारों निबंधों में प्रसंगानुसार भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं सभ्यता के उज्ज्वल पक्षों का लेखक ने कुशलता से वर्णन किया है। 'कुछ कपूर की' शीर्षक से दूसरे अंश में 'हिन्दी आलोचना को श्री बालमुकुन्द गुप्त की देन' तथा 'स्वच्छन्दतावादी समीक्षक नन्ददुलारे वाजपेयी' की विस्तृत विवेचना करते हुए आलोचना के सम्बंध में लेखक ने अपने जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं उनमें उनके निष्पक्ष विचारों का प्रतिपादन दृष्टव्य है। शास्त्री जी का कथन है– 'आलोचना का उद्देश्य किसी को अपदस्थ कर उसकी रचना शक्ति को कुंठित करना नहीं, उसकी त्रुटियों को दूर कर उसे समर्थ लेखक बनने में सहायता पहुंचाना है।'5 'कामायनी में प्रकृति' के महिमाशाली एवं कलात्मक चित्रण के कारण लेखक ने कवि प्रसाद को हिन्दी का अन्यतम कवि माना है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की अत्यंत सशक्त विधा गीत के अन्तर्गत नवगीत आंदोलन की चर्चा करते हुए इसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति लेखक आश्वस्त है क्योंकि 'अन्य काव्य–रूपों की तुलना में गीत अधिक भावभीनी और गुनगुना उठना ऐसे क्षणों में मानव मन की विवशता है और इस विवशता में ही मानवता सुरक्षित है।'6 लेखक की शोधपरक सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देने वाले आधुनिक एवं अत्याधुनिक कविता सम्बंधी निबंधों में जहां एक ओर स्वातंत्रयोत्तर काव्य प्रवृत्तियों की विस्तार से चर्चा की गई है वहीं नई कविता धारा की अच्छी कविताओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए लेखक ने ऐसे कवियों का आह्वान किया है जो नवीन काव्य और सामान्य काव्य रसिक के बीच की बढ़ती हुई खाई को पाट सकें।

'चिंतन मुद्रा' नामक पुस्तक में आधुनिक काल के साहित्य का मूल्यांकन किया गया है, पर उनके केन्द्र में हैं तुलसीदास। उन्होंने तुलसीदास के काव्य के मूल्यांकन में पश्चिमी दृष्टिकोण के बंदी आलोचकों की मान्यताओं का जमकर खण्डन किया है और तुलसी के काव्य से प्रासंगिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सहज भारतीय विवेक और दृष्टि की स्थापना पर बल दिया है। इसी निबंध में शास्त्री जी ने एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी दिया है कि पश्चिम में धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी के रूप में जाने जाते हैं परन्तु भारत में वैज्ञानिक चिन्तन और पौराणिक कल्पनाओं का सह अस्तित्व स्वीकृत रहा है। तुलसी काव्य के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा के कारण ही शास्त्री जी, 'आधुनिकता की चुनौती और तुलसीदास' शीर्षक लेख में तुलसी काव्य में विद्यमान अविच्छिन्न, उदात्त विवेक को न सिर्फ आधुनिकता के उज्ज्वल पक्ष के साथ जोड़ते हैं बल्कि तुलसी के मूल्य विमर्श की कसौटी पर आधुनिकता को भी कसते हुए प्रतीत होते हैं।

'तुलसी के राम' जैसे बहुशः विचारित और विवेचित विषय पर लिखते हुए आचार्य विष्णुकांत शास्त्री अपनी सहृदयता का तो परिचय देते ही हैं राम के व्यक्तित्व में युग की आकांक्षा के अनुरूप होने वाले परिवर्तनों पर खासतौर से रोशनी डालते हैं। राम की सर्वजनसुलभता, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के अनुसार तुलसी के राम की एक बड़ी विशेषता है जो उन्हें प्रासंगिक बनाती है। राम के व्यक्तित्व में शील की प्रतिष्ठा के लिये परंपरित रामकथा में तुलसीदास द्वारा किये गए परिवर्तनों की वे तार्किक विवेचना करते हैं

और 'तुलसी का दैन्य', 'तुलसी की तेजस्विता', 'राम का नाम ही नहीं, राम का काम भी' जैसे निबंधों में तुलसीदास के काव्य मर्म की व्याख्या करते हुए उनकी भक्ति के मूल्य को सामाजिक अपेक्षाओं के संदर्भ में परखते हैं।

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य की उपधाराओं के नामकरण पर पुनर्विचार करते हुए शास्त्री जी ने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित अवश्य किये हैं, हिन्दी के सूफी कवियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग दृष्टि की उदारता, सहृदयता एवं भाव के स्तर पर सामाजिक आकांक्षाओं के प्रति अपने दायित्वों के अनुभव का प्रमाण सूफी कवियों के मूल्यांकन में दिखाई देता है। शास्त्री जी भारतीय संदर्भों में इस्लाम और उसके अनुयायियों की कुछ ठोस जमीनी हकीकतों का बयान करते हैं। हिन्दी आलोचना के विकास काल के साहित्यिक द्वन्द्वों का गहरा अनुशीलन कराते हुए आचार्य विष्णुकांत शास्त्री की 'चिंतन मुद्रा' में कई निबंध हैं। द्विवेदी युगीन आलोचना की मुख्य प्रवृत्तियों, उनके आंतरिक टकरावों और तनावों का भी यथासंभव विश्लेषण शास्त्री जी ने किया है, परन्तु इस समूचे परिदृश्य में समाज की अपनी अन्तरंग बनावट और उस पर पड़ने वाले बाह्य परिस्थितियों के दबाव को समझने–समझाने की कोशिश कम दिखाई देती है। इस काल के प्रमुख आलोचकों का भी शास्त्री जी ने परिचय दिया है और उनकी मान्यताओं का भी विवेचन किया है। इस समय की आलोचना पर शोधार्थियों, विद्यार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिये सामग्री का समायोजन व्यवस्थित रूप से किया गया है। आम तौर पर साहित्य और आलोचना को फौरी कार्रवाई की तरह निबटाने वाले इस दौर में शास्त्री जी के दो निबंध– 'शास्त्रीयतावादी समीक्षक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र' एवं 'भावुक समीक्षक शांतिप्रिय द्विवेदी, अपवाद की तरह हैं। शास्त्री जी ने इन दोनों समीक्षकों का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है और हिन्दी आलोचना की भाषा तथा अन्तर्वस्तु में इन आलोचकों के द्वारा किये गए योगदान का सटीक मूल्यांकन किया है।

शास्त्री जी ने आधुनिक हिन्दी कविता के पाठकों से कटते जाने पर भी गम्भीरता से विचार किया है और यह स्वीकार किया है कि हिन्दी का कवि अपने समुदाय के भाषा–बोध, विचार बोध और भाव बोध से अलग होकर पश्चिमी समुदाय की आधुनिक सोचों से लगातार ज्यादा प्रभावित/आतंकित होता गया। हमारे समाज को पीछे छोड़कर खुद बहुत आधुनिक बन जाने के मोह के कारण हमारे नए साहित्य और समाज में आए हुए विच्छेद को घातक मानते हुए शास्त्री जी इस स्थिति से उबरने के लिये कतिपय महत्वपूर्ण सुझाव भी देते हैं।

'अनुचिन्तन' नामक पुस्तक उनके विचारपरक निबंधों का मानक संकलन है। पुस्तक के पहले निबंध 'लोक–मंगल और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' में लेखक ने शुक्लजी की लोकमंगल सम्बंधी साहित्यिक अवधारणा का गहन विवेचन किया है। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'शशांक' के अनुवादक के रूप में' शीर्षक अपने समीक्षात्मक निबंध में लेखक ने शुक्लजी के अनुवाद–कार्य के महत् प्रयोजन और उसकी विशिष्ट मान्यताओं पर बड़ा ही सार्थक प्रकाश डाला है। अन्य दो विचारपरक निबंधों– 'आधुनिक हिन्दी कविता और छंद' तथा 'काव्य का वाचिक सम्प्रेषण' में व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों प्रकार की समीक्षाओं का समन्वय मिलता है। छंदों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों के प्रकाश में कई पीढ़ी के कवियों का रचनात्मक विवेचन बड़ी सफलता से किया गया है। छन्दों का अवमूल्यन और वाचिक सम्प्रेषण में ह्रास होना, आधुनिक हिन्दी कविता के पीड़क प्रसंग हैं। मुक्त छन्द को सामयिक कविता का अभिन्न अंग मानते हुए लेखक ने उसके अनगढ़ रूपों और बेतुके प्रयोगों का उचित प्रत्याख्यान भी किया है।

कोलकाता के सुप्रसिद्ध हिन्दी रंगमंच 'अनामिका' का अधिष्ठाता और अध्यक्ष होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। नाटक की विकास प्रक्रिया और उसके अद्यतन रूपों का जो सूक्ष्म विवेचन 'अंतरंग रंगमंच' शीर्षक निबंध में दिखाई पड़ता है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह निबंध इस विधा के अध्येयताओं का मार्ग–दर्शन करने में समर्थ है। शुक्लेतर विवेचन से जुड़े अन्य तीन निबंधों में 'महाराणा प्रताप : आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में' नामक निबंध का विवेचन अधिकतर विवरणात्मक है। 'मोतियों की हाट ओ चिनगारियों का एक मेला' निबंध में महादेवी जी के काव्य का व्यावहारिक धरातल पर मूल्यांकन किया गया है।

'तुलसी के हिये हेरि' पुस्तक में शास्त्री जी के तुलसी–साहित्य विषयक सत्रह निबंध संग्रहीत हैं, इन निबंधों में कहीं तुलसी को 'आधुनिकता की चुनौती' के बराबर खड़ा किया गया है तो कहीं कबीर और तुलसी तथा तुलसी और रवीन्द्र में आंतरिक साम्य दिखाने का प्रयास किया गया है। कतिपय आलोचकों ने यह भ्रम पैदा करने की कोशिश की है कि कबीर और तुलसी एक दूसरे के विलोम हैं और कबीर ने जाति–व्यवस्था को समाप्त करने का जो अभियान आरम्भ किया था उसे तुलसी ने ही पटरी से उतार दिया। यह निष्कर्ष भ्रामक ही नहीं, तथ्यहीन भी है। लेखक ने सटीक उदाहरणों द्वारा इस विचार का खंडन किया है।

इस पुस्तक के कुछ निबंधों में तुलसी के 'राम', तुलसी के 'दैन्य', उनके 'मनोरथ', उनकी 'तेजस्विता', उनके 'स्वान्तःसुखाय' उनकी विप्र और सन्त सम्बंधी दृष्टि, चित्रकूट में उनकी साधना और उपलब्धि आदि का विवेचन किया गया है। कतिपय निबंध 'विनयपत्रिका' को केन्द्र में रखकर लिखे गए हैं जिनमें 'मनोविजय की साधना', क्रिया और कृपा, 'भक्तिमूला प्रपति' आदि का विवेचन किया गया है। इन निबंधों में इतना अधिक वैविध्य है कि तुलसी का सम्पूर्ण भक्त और कवि व्यक्तित्व प्रकाशित हो उठा है।

'आधुनिक हिन्दी साहित्य के कुछ विशिष्ट पक्ष' पुस्तक आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के वैदुष्यपूर्ण, विचारात्मक और आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह है। इन लेखों के माध्यम से लेखक ने साहित्य क्षेत्र में व्याप्त बहुत–सी भ्रांतियों का निराकरण भी किया है। ये निबंध 1986 से 2002 के बीच लिखे गए हैं। इसमें कुल 14 निबंध हैं जिसमें प्रथम निबंध उनके स्वयं के परिवेश और सर्जना की पृष्ठभूमि पर आधारित है। शेष 13 निबंध साहित्य से सम्बंधित हैं। अनुवाद और आलोचना, प्रश्नोत्तर, भाषण, शोध, विवेचन के वैविध्य का समग्र रूप इस पुस्तक में परिलक्षित होता है।

'भारतेन्दु की खड़ी बोली की कविताएं' शीर्षक निबंध में शास्त्री जी ने सौदाहरण विस्तृत समालोचना के माध्यम से यह स्थापित किया है कि खड़ी बोली कविता के क्षेत्रा में उनके द्वारा किये गए कार्य को आगे बढ़ाकर ही परवर्ती कवियों ने खड़ी बोली को हिन्दी कविता का प्रधान माध्यम बनाने में सफलता प्राप्त की है।

पुस्तक में संकलित 'आधुनिक सभ्यता का संकट और कामायनी' निबंध कई दृष्टियों से लेखक की नवीन चिन्तन प्रणाली को स्पष्ट करता है। आचार्य जी का मानना है कि 'कामायनी' में निरूपित मूल्य आधुनिक सभ्यता के संकट के लिये जिम्मेदार कुछ प्रमुख मूल्यों से टकराते हैं। कामायनी की दृष्टि चैतन्यवादी है, भौतिकवादी नहीं।

'वन शरण का उपकरण मन' लेख में शास्त्री जी निराला के समस्त उत्तरवर्ती शरणागति काव्य की पड़ताल करते हैं। उनकी स्थापना है कि भाव और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर स्वाभाविक सहज निराला का शरणागति काव्य किसी आत्मप्रवंचना और रहस्यवादी रूढ़ियों का काव्य नहीं है बल्कि आंतरिक विश्वास से उद्भूत सगुण भक्ति भाव का काव्य है। इस ऊंचाई पर पहुंच कर कवि के लिये कला का चमत्कार नगण्य हो उठा है। भाव के आवेग में भाषा की पकड़ तो ढीली हुई है किन्तु मार्मिकता और अधिक गहरा उठी है।

आलोचक विष्णुकांत शास्त्री ने हिन्दी के शीर्षस्थ कवियों पर लिखा हैं। कोई भी आलोचक सभी रचनाकारों पर नहीं लिख पाता, सभी रचनाकारों को वह पढ़ भी नहीं पाता। पाठक उन्हीं रचनाकारों में रस प्राप्त करता है, जिन्हें पढ़ने में उसे आत्मतोष और सुख का अनुभव होता है। शास्त्री जी ने भी तुलसी, सूर, कबीर, भारतेन्दु, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी, दिनकर, सर्वेश्वर आदि कवियों पर लिखा।

निश्चय ही तुलसीदास उनकी विचारणा के केन्द्र में हैं। शास्त्री जी के व्यक्तित्व में जो विनय, प्रणति और आत्मनिवेदन के गहरे तत्त्व हैं, वे ही उन्हें उन उन कवियों की ओर ले जाते हैं जहां उनके मन को तृप्ति और संतोष प्राप्त होता है। शास्त्री ने आलोचकों पर भी गहराई से विचार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि पर विस्तार से लिखा है। जहां वे इन आलोचकों की दृष्टियों से सहमत हैं अथवा जहां वे इनसे असहमत हैं, सभी को उन्होंने स्पष्टता से व्यक्त किया है। जहां उनके व्यक्तित्व में गहरा संकोच है, वहीं उनकी अभिव्यक्ति में निश्छल और निःसंकोच खुलापन। उनकी आलोचना दृष्टि में वही पारदर्शिता है जो उनके व्यक्तित्व में भी पूरी तौर पर परिलक्षित होती है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री मर्मज्ञ आलोचक और कुशल निबंधकार हैं। बौद्धिक अभिजात्य के विश्वास ने उनकी व्यावहारिक समीक्षा के साथ–साथ सैद्धांतिक समीक्षा को भी अधिक पुष्ट किया है। उनका कृतित्व विपुल होते हुए गुण और गरिमा से युक्त है।। उनकी रचनाओं को दो भागों में बांटा जा सकता है। सद्धैंतिक समीक्षा व व्यावहारिक समीक्षा। उनकी सद्धैंतिक समीक्षा भी अनेक रूपों में उपलब्ध होती हैं। इनमें निबंध, स्वतंत्र मौलिक पुस्तकें और सम्पादित तथा अनूदित ग्रंथों की भूमिकाएं प्रमुख हैं। सियाराम तिवारी का कथन है– शास्त्री जी का आलोचनात्मक लेखन इस बात का प्रमाण है कि वे केवल व्यावहारिक आलोचना में ही विलक्षण पटुता नहीं रखते हैं, वरन् सैद्धांतिक आलोचना की भी आपद क्षमता धारण करते हैं।7

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के समीक्षक व्यक्तित्व की सशक्त उपलब्धियां महत्त्वपूर्ण है। इनकी समीक्षा में सांस्कृतिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि का उन्मेष, उनके काव्यालोचन को अधिक प्रौढ़, व्यापक और सर्वांगीण रूप प्रदान कर सका है। हम आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के आलोचना कर्म को तीन रूपों में पाते हैं– 1. चर्चित कृतियों की समीक्षा, 2. विशिष्ट साहित्यकारों के साहित्यिक अवदानों की समीक्षा, 3. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन, साहित्य की अन्य विधाएं एवं साहित्य के जटिल प्रश्नों की समीक्षा।

सृजन की ज्वाला बिना कराहे झेलने वाले शास्त्री जी ने हिन्दी समीक्षा साहित्य को अपनी तलस्पर्शी दृष्टि, गहन अध्ययन तथा अपनी परम्परा, संस्कृति एवं चिंतन के स्वस्थ तत्त्वों से समृद्ध किया है। शास्त्री जी की समीक्षाएं प्रचलित लीक से हटकर है जिसका प्रमाण सूर्यप्रसाद दीक्षित की यह टिप्पणी है– 'समीक्षक के रूप में शास्त्री जी का परिदान सर्वथा महत्त्वपूर्ण है। संप्रति हिन्दी समीक्षा पाठच्युत होती जा रही है और मात्रा अखबारी एवं व्यूहबद्ध दिखाई दे रही है जबकि शास्त्री जी की समीक्षाएं, पाठकेन्द्रित व्याख्या और वैचारिक औदात्य का उदाहरण बनकर प्रस्तुत हुई हैं। ऐसी ही समीक्षाएं कालक्रम में सत् समीक्षा का मानक सिद्ध होती है।8'

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के समीक्षा–सिद्धांतों के विवेचन और विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि शुकलोत्तर हिन्दी–समीक्षा के क्षेत्र में उनका समस्त समीक्षा–कार्य युगानुरूप, विकासशील एवं स्वतंत्रा चिंतक का है। आचार्य एवं समीक्षक के रूप में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का साहित्य–विषयक पांडित्य अत्यंत प्रखर है। साहित्यशास्त्र के प्रत्येक तत्त्व एवं सिद्धांत के विषय में उनका स्वतंत्र अभिमत है। एक तत्त्वाभिनिवेशी समीक्षक होने के नाते उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों एवं उनके तत्त्वों का मंथन करके हिन्दी समीक्षकों के समक्ष साहित्यालोचन की विशिष्ट शैली का निदर्शन उपस्थित किया है। शुक्लजी के पश्चात् हिन्दी–समीक्षा के क्षेत्रा में, जब नवमतवादी एवं प्रगतिवादी समीक्षकों के द्वारा साहित्य के क्षेत्रा से रस, अलंकार एवं ध्वनि आदि काव्यतत्त्वों का उन्मूलन किया जाने लगा, तब भारतीय साहित्यशास्त्र की परम्परा को विकसित करने एवं परम्परा से प्राप्त सिद्धान्तों को आधार बनाकर समीक्षा करने का श्रेय आचार्य विष्णुकांत शास्त्री को भी है।

प्रोफ़ेसर गणेशदत्त त्रिपाठी का कथन है– हिन्दी के महान आचार्य विष्णुकांत शास्त्री एक रसज्ञ व तलस्पर्शी समीक्षक हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्लोत्तर परम्परा को उन्होंने निरंतर आगे बढ़ाया है। वे तत्वान्वेषक और क्षीर–नीर विवेकी हैं। किसी भी पूर्वाग्रह से पूर्णतः मुक्त होकर, वे आलोच्य कृति या लेखक की विचार–सारणी का तर्क–संगत परीक्षण करते हैं तथा पूर्णतः मुक्त होकर वे आलोच्य कृति या लेखक की विचार–सारणी का तर्क–संगत परीक्षण करते हैं तथा पूर्णतः संवेदनशीलता के साथ अपना अभिमत प्रगट करते हैं। लेखक की मनोदशा, अभिप्राय तथा कथन की संगति के तारतम्य में वे अपनी समीक्षा का ताना–बाना बुनते हैं। लेकिन अपने निष्कर्षों को अकाट्य तर्कों से पुष्ट करने के बाद ही अत्यंत सहजता से प्रस्तुत कर देते हैं। समस्त समीक्षाओं में इनकी तथ्यपरक दृष्टि न केवल गवेषणात्मक होती है वरन् अपेक्षित तटस्थता का निर्वाह भी करती है।9

सूर्य प्रसाद दीक्षित का मंतव्य शास्त्री जी के समीक्षकीय रूप को रेखांकित करता है– 'समन्वयधर्मी सदाशयता के कारण शास्त्री जी की समीक्षा पद्धति में बेहद खुलापन और असाधारण पारदर्शिता आ गई है। सीमाओं से मुक्त हो जानेवाला, गंथियों से बचा रहने वाला और रागद्वेष से परे रहने वाला समीक्षक ही कालक्रम में बड़ा समीक्षक सिद्ध होता है।'10

इन्होंने हिन्दी समीक्षा की उदात्तता, व्यापकता एवं महत्ता की शोध का जो श्लाघनीय प्रयत्न किया, वह हिन्दी–समीक्षा के लिये महत्व की वस्तु है। आचार्य विष्णुकांत ने शुक्लोत्तर हिन्दी–समीक्षा को, अपने सद्धैंतिक विवेचन द्वारा जो कुछ प्रदान किया है, वह उसके नवोत्थान का सम्पूर्ण प्रतिफलन उपस्थित करने में समर्थ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शुक्ल परम्परा के वह स्वस्थ एवं मूलग्राही समीक्षक के रूप में आचार्य विष्णुकांत शास्त्री का योगदान अमूल्य है। अपने सशक्त व्यक्तित्व के कारण आचार्य विष्णुकांत अपने समकालीन समीक्षकों में अग्रणी हैं। सैद्धांतिक समीक्षा का शास्त्रीय क्षेत्र या व्यावहारिक समीक्षा में इनका योगदान का विशेष रूप में उपकृत हुआ है।

संदर्भ संकेत

1. रामप्रकाश, समीक्षा–सिद्धान्त, पृ. 163 ।
2. प्रकाश त्रिपाठी (सं), विष्णुकांत शास्त्री : सृजन के आयाम, पृ. 169 ।
3. प्रेमशंकर त्रिपाठी (सं), विष्णुकांत शास्त्री अमृत महोत्सव : अभिनन्दन ग्रंथ, खण्ड–3, पृ. 7 ।
4. प्रकाश त्रिपाठी (सं), विष्णुकांत शास्त्री : सृजन के आयाम, पृ. 395 ।
5. विष्णुकांत शास्त्री, सुधियां उस चंदन के वन की, पृ. 72 ।
6. वहीं, पृ. 200 ।
7. प्रेमशंकर त्रिपाठी (सं), विष्णुकांत शास्त्री अमृत महोत्सव : अभिनन्दन ग्रंथ, खण्ड–4, पृ. 32 ।
8. तारा दूगड़, आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : व्यक्ति एवं रचनाकार, पृ. 108 ।
9. मनोज कुमार पाण्डेय (सं), आचार्य विष्णुकांत शास्त्री : चिंतक और चिंतन, पृ. 150 ।
10. माध्यम, अक्तूबर–दिसम्बर 2001, पृ. 11 ।